

## मूलाचार : एक अध्ययन

मूलाचार को आज दिगम्बर जैन परम्परा में आगमस्थानीय ग्रन्थ के रूप में मान्य किया जाता है। यह ग्रन्थ मुख्यतः साधु-साध्वियों के आचार से सम्बन्धित है। जैन परम्परा में अधिकांश आगमिक साहित्य मुख्यतः साधु-साध्वी के आचार अथवा उनके जीवन वृत्तों से सम्बन्धित है। मूलाचार भी एक आचारपरक ग्रन्थ है और यही कारण है कि धवला और जयधवला में इसकी गाथाओं को आचारांग की गाथा कहकर उद्धृत किया गया है। यद्यपि आचारांग भी मुनि-आचार का ग्रन्थ है, फिर भी आचारांग और मूलाचार में विषयवस्तु और प्रस्तुतीकरण की शैली की दृष्टि से महत्वपूर्ण अन्तर है। सम्भवतः जब दिगम्बर परम्परा में आचारांग को लुप्त मान लिया गया, तो उसके स्थान पर मूलाचार को ही आचारांग के रूप में देखा जाने लगा।

मूलाचार के सम्बन्ध में सर्वप्रथम विचारणीय प्रश्न यह है कि वह किस परम्परा का ग्रन्थ है? यह सुनिश्चित सत्य है कि यह श्वेताम्बर परम्परा का ग्रन्थ नहीं है। इसके दो कारण हैं - प्रथम तो यह कि यह मुनि के अचेलकत्व पर दिगम्बर परम्परा के समान ही बल देता है। यद्यपि आचारांग आदि कुछ प्राचीन स्तर के श्वेताम्बर मान्य आगम ग्रन्थों में अचेलकत्व का उल्लेख है, फिर भी वे अचेलकत्व पर उतना बल नहीं देते जितना कि मूलाचार में दिया गया है। आचारांग में अचेलकत्व का एकान्त रूप से प्रतिपादन नहीं हुआ है, उसके प्रथम श्रुतस्कन्ध में ही मुनि के वस्त्रग्रहण सम्बन्धी कुछ उल्लेख भी पाये जाते हैं। यही कारण था कि दिगम्बर परम्परा में उसे अस्वीकृत कर उसके भी लुप्त होने की घोषणा कर दी गयी। मूलाचार में मुनि के अचेलकत्व पर जो बल दिया गया है उससे स्पष्ट है कि यह ग्रन्थ श्वेताम्बर परम्परा का नहीं है। दूसरे मूलाचार की भाषा मुख्यतः जैन शौरसेनी प्राकृत है। यह बात भिन्न है कि उस पर कहीं-कहीं महाराष्ट्री प्राकृत का प्रभाव है। कोई भी ग्रन्थ श्वेताम्बर परम्परा में शौरसेनी प्राकृत में नहीं लिखा गया है, अतः यह श्वेताम्बर परम्परा का ग्रन्थ नहीं हो सकता। इससे स्वाभाविक रूप से यह प्रश्न उठता है कि क्या यह दिगम्बर परम्परा का ग्रन्थ है? इसे स्पष्ट रूप से दिगम्बर परम्परा का ग्रन्थ भी नहीं कहा जा

सकता। इसमें कुछ ऐसे तथ्य भी हैं जो दिगम्बर परम्परा में मान्य नहीं हैं। उदाहरणार्थ इसमें स्त्री-मुक्ति से सम्बन्धित निम्न गाथा पाई जाती है -

एवं विधाणचरियं चरितं जे साधवो य अज्जाओ ।

ते जगपुज्जं कित्ति सुहं च लध्दूण सिज्जंति ॥

इस गाथा में स्पष्ट रूप से यह कहा गया है कि 'जो साधु-साध्वी इस प्रकार की चर्या का पालन करते हैं, वे जगत्पूज्यत्व एवं कीर्तिसुख को प्राप्त कर मुक्ति को प्राप्त करते हैं। यद्यपि दिगम्बर परम्परा के कुछ विद्वानों ने इस गाथा की व्याख्या भवान्तर मुक्ति के सन्दर्भ में करके, इसे अपनी परम्परा से सम्बद्ध बताने का प्रयास किया है, जिस पर हम आगे विस्तृत चर्चा करेंगे। यहाँ हमारा मन्तव्य इतना ही है कि यह गाथा दिगम्बर परम्परा के विरोध में अवश्य जाती है।

जैन परम्परा आचार प्रधान है, यद्यपि उसमें साधनापथ में चारित्र के साथ-साथ ज्ञान और दर्शन (भक्ति) को भी स्थान प्राप्त है। किन्तु वे जब तक आचरण से संयुक्त नहीं होते तब तक मोक्ष की उपलब्धि कराने में सक्षम नहीं माने गये हैं। मोक्ष की उपलब्धि का अन्तिम कारण तो सम्यक् चारित्र ही माना गया है। उसमें दर्शन और ज्ञान भी आचरण का अंग है। स्वयं मूलाचार में दर्शन और ज्ञान को भी पाँच आचारों में परिगणित किया गया है। इसका तात्पर्य यह है कि ज्ञान और दर्शन मात्र बोध या आस्था की वस्तुएँ नहीं हैं, वे भी जीवन में जीने के लिए हैं।

मूलाचार में ज्ञानाचार, दर्शनाचार, चरित्राचार, तपाचार और वीर्याचार के रूप में पाँच आचारों का उल्लेख पाया जाता है। इससे स्पष्ट है कि जैन परम्परा आचार प्रधान है। पुनः जैन आगमों में क्रियावादी, अक्रियावादी, अज्ञानवादी और विनयवादी के रूप में चार प्रकार की दार्शनिक विचारधाराओं का उल्लेख है। इनमें भी जैन अपने आप को क्रियावादी के ही निकट मानते हैं। आचारांगसूत्र के प्रारम्भ में ही महावीर ने कहा कि जो आत्मा को और उसके (चतुर्गति में) संचरण को अर्थात् पुनर्जन्म को मानता है, वही आत्मवादी, लोकवादी, क्रियावादी और कर्मवादी है।

इस प्रकार जैन परम्परा आचार प्रधान सिद्ध होती है। इस तथ्य का एक अन्य प्रमाण यह भी है कि जैन परम्परा में ग्रन्थ निर्माण की प्रक्रिया में सर्वप्रथम आचारांग की रचना हुई, ऐसा माना जाता है।

आज महावीर की निर्ग्रन्थ श्रमण परम्परा मुख्यतः दो भागों में विभाजित है। श्वेताम्बर और दिगम्बर। श्वेताम्बर परम्परा में आज भी जो प्राचीन आगमिक ग्रन्थ उपलब्ध हैं उनमें आचारांग, सूत्रकृतांग, उत्तराध्ययन, दशवैकालिक, आचारदशा

(दशाश्रुतस्कंध) व्यवहार कल्प, जीतकल्प, निशीथ, महानिशीथ, आवश्यक आदि सभी मुनि आचार से सम्बन्धित हैं।

किन्तु दुर्भाग्य से दिगम्बर परम्परा के पास इन आचार प्रधान प्राचीन ग्रन्थों की कमी है। पण्डित नाथूराम जी प्रेमी के शब्दों में दिगम्बर परम्परा में मुनियों के आचार सम्बन्धी ग्रन्थों की बहुत कमी है। प्राचीन ग्रन्थों में ले देकर मूलाचार ही एक ग्रन्थ है जो प्राचीन जान पड़ता है। वीरनन्द का आचारशास्त्र, आशाधर का अनगारधर्माभूत आदि उत्तरवर्ती ग्रन्थ इसीके आधार पर लिखे गये हैं। मूलाचार का दिगम्बर परम्परा या अचेल परम्परा में कितना महत्वपूर्ण स्थान है वह तो इससे ही सिद्ध हो जाता है कि तत्त्वार्थसूत्र की दिगम्बर टीकाओं तथा षट्खण्डागम की धवला टीका में आचारांग के नाम से मूलाचार की गाथाओं को ही उद्धृत किया गया है। मेरी जानकारी में सम्पूर्ण दिगम्बर जैन साहित्य में मुनि आचार का प्रतिपादक मूलाचार को छोड़कर अन्य कोई भी प्राचीन ग्रन्थ नहीं है। यद्यपि यह प्रश्न विचारणीय है कि क्या मूलाचार वस्तुतः आचार्य कुन्दकुन्द की वर्तमान दिगम्बर जैन परम्परा का ग्रन्थ हो सकता है। इस प्रश्न पर हम आगे गम्भीरता से विचार करेंगे। फिर भी यह निर्विवाद है कि आज दिगम्बर जैन परम्परा इसे मुनि आचार के प्रतिपादक आगम स्थानीय ग्रन्थ के रूप में स्वीकार करती है। इससे इस ग्रन्थ की महत्ता स्वयं ही स्पष्ट हो जाती है।

यह भी प्रसन्नता का विषय है कि पूर्व के तीन संस्करणों “मुनि अनन्तकीर्ति दिगम्बर जैन ग्रन्थमाला गिरगाँव, मुम्बई ई. सन् १९१९; माणिकचन्द दिगम्बर जैन ग्रन्थमाला १९१२, शान्तिसागर जैन ग्रन्थ प्रकाशक सभा, फलटन १९५४ ई. के तीन स्थानों से प्रकाशित होने के पश्चात् अब यह मूर्तिदेवी जैन ग्रन्थमाला के अन्तर्गत भारतीय ज्ञानपीठ से पुनः प्रकाशित हुआ है। जहाँ तक इस ग्रन्थ के समीक्षात्मक अध्ययन का प्रश्न है, पं. नाथूराम प्रेमी, पण्डित सुखलाल जी संघवी आदि कुछ विद्वानों के शोधपरक लेखों के अतिरिक्त यह ग्रन्थ उपेक्षित ही रहा। यद्यपि इन दोनों विद्वानों ने अपने लघु निबन्धों में इससे सम्बन्धित कुछ प्रश्नों पर अत्यन्त गम्भीरता से विचार किया है। यह हमारे लिए प्रसन्नता का विषय है कि डॉ. फूलचन्द ‘प्रेमी’ ने इस ग्रन्थ को अपने शोध-प्रबन्ध का विषय बनाया और गम्भीरता पूर्वक इसके विविध पक्षों का अध्ययन किया। इससे अधिक प्रसन्नता का विषय यह है कि उनका यह शोध-प्रबन्ध हमारे समक्ष पार्श्वनाथ विद्यापीठ, वाराणसी से प्रकाशित हुआ है। यह एक भिन्न प्रश्न हो सकता है कि हम डॉ. फूलचन्द ‘प्रेमी’ के निष्कर्षों से कितने और कितनी सीमा तक सहमत हैं,

परन्तु डॉ. फूलचन्द 'प्रेमी' की यह कृति तुलनात्मक अध्ययन की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण मानी जा सकती है।

जहाँ तक मूलाचार में प्रतिपादित विषयों के विवरणात्मक विवेचन का प्रश्न है, मैं कोई अधिक विस्तृत विवेचन प्रस्तुत नहीं करना चाहता, यद्यपि आचार के उन सभी नियमों के इतिहास की दृष्टि से पर्याप्त रूप से विवेचन किया जाना अपेक्षित है, किन्तु इसे भविष्य के विवेचन के लिए छोड़कर मैं केवल ग्रन्थ स्वरूप, ग्रन्थकार और उसकी परम्परा आदि पर ही संक्षेप में विचार प्रस्तुत करना चाहूँगा। यद्यपि इन प्रश्नों पर डॉ. फूलचन्द जैन ने भी विचार किया है किन्तु न तो उनके विचारों को और न ही मेरे विचारों को अंतिम कहा जा सकता है। मेरी अपेक्षा तो यही है कि इस प्रकार के चिन्तन अनुचिन्तन से इस ग्रन्थ के विविध पक्षों के अध्ययन की धारा निरन्तर प्रवाहित होती रहे। विद्वानों से अपेक्षा है कि युक्तिपूर्वक समीक्षा के माध्यम से इस ग्रन्थ के सम्बन्ध में और अधिक प्रकाश डालने का प्रयत्न करें।

### मूलाचार के कर्ता

सर्वप्रथम हम इस ग्रन्थ के कर्ता के सम्बन्ध में विचार करेंगे। मूलाचार के कर्ता के प्रश्न को लेकर मुख्य रूप से दो प्रकार की मान्यताएं प्रचलित हैं। कुछ लोग इसे आचार्य कुन्दकुन्द की कृति मानते हैं तो दूसरी ओर कुछ लोग इसे आचार्य वट्टकेर की कृति मानते हैं। जो लोग इसे आचार्य कुन्दकुन्द की कृति मानते हैं उनका एक मात्र आधार मूलाचार की कुछ प्रतियों में अंतिमप्रशस्ति में "कुन्दकुन्दाचार्यप्रणीतमूलाचारास्य" विवृत्ति कृतिरियम् वसुनन्दीनः श्रीश्रमणस्य" यह उल्लेख पाया जाना है। मूलाचार की वसुनन्दि के वृत्ति के अतिरिक्त मुनि चिन्तामणि की एक टीका भी मूलाचार पर मिलती है। इसकी पुष्पिका में भी "कुन्दकुन्दाचार्यदेव विरचिते मूलाचारे" ऐसा लिखा हुआ है। इन दो उल्लेखों के अतिरिक्त मूलाचार आचार्य कुन्दकुन्द की कृति है, ऐसा कहीं भी स्पष्ट उल्लेख नहीं है। आश्चर्य तो यह है कि मूलाचार की वसुनन्दि की वृत्ति के प्रारम्भ और अन्त में भी स्पष्ट रूप से इसके कर्ता श्री वट्टकेराचार्य का उल्लेख मिलता है। जब स्वयं वृत्तिकार ही इसे श्रीमदाचार्य वट्टकेर प्रणीत मूलाचार उल्लेख करता है तो फिर इस शंका के लिए कोई स्थान नहीं रहता कि यह वट्टकेर की कृति नहीं है और तब परवर्ती किसी लिपिकार के द्वारा ग्रन्थ के अन्त में कुन्दकुन्द का नाम उल्लेख कर देने मात्र से इसे कुन्दकुन्द का ग्रन्थ नहीं कहा जा सकता। मुनि चिन्तामणी नायक की जो मूलाचार पर टीका उपलब्ध है, वह वसुनन्दि के बाद की है और उसकी प्रति भी प्राचीन नहीं है। अतः उसकी पुष्पिका में कुन्दकुन्द का

उल्लेख मूलाचार के कर्ता के रूप में होना अधिक महत्वपूर्ण माना जा सकता है। यह मात्र दिगम्बर परम्परा में कुन्दकुन्द के प्रति जो श्रद्धातिरेक है उसका ही परिणाम कहा जा सकता है। हम एक बात और यहाँ स्पष्ट कर देना चाहेंगे कि यदि “बारस्स अणुवेक्खा” को छोड़कर कुन्दकुन्द के अन्य सभी ग्रन्थों की कुल २१ गाथाएं मूलाचार में समस्त रूप से पायी जाती हैं तो इस आधार पर यह निष्कर्ष निकाल लेना कि यह आचार्य कुन्दकुन्द की कृति है, किसी भी दृष्टि से उचित नहीं है। पुनः कुन्दकुन्द के ग्रन्थों की जो गाथाएं मूलाचार में मिलती हैं उनमें से अनेक श्वेताम्बर ग्रन्थों में भी मिलती हैं। यदि इसी दृष्टि से विचार करें तो मूलाचार और भगवतीआराधना की ६५ गाथाएं समान हैं, किन्तु क्या इस समानता के आधार पर यह कहा जा सकता है कि मूलाचार शिवार्य की रचना है। इससे भी और महत्वपूर्ण बात यह है कि श्वेताम्बर परम्परा के प्रकीर्णकों और आवश्यक निर्युक्ति की ३०० से अधिक गाथाएं मूलाचार में उपलब्ध होती हैं तो क्या इस आधार पर यह मान लिया जाए कि यह श्वेताम्बर परम्परा के किसी आचार्य की कृति है। मात्र २१ गाथाओं की समानता को लेकर इसे कुन्दकुन्द की कृति बताना समुचित नहीं है।

दिगम्बर परम्परा के बहुश्रुत विद्वान पं. नाथूरामजी प्रेमी ने अनेक सबल तर्कों के आधार पर यह स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है कि यह ग्रन्थ कुन्दकुन्द का तो हो ही नहीं सकता, अपितु उनकी परम्परा का भी ग्रन्थ नहीं है। इस सम्बन्ध में विस्तृत चर्चा तो हम ग्रन्थ की परम्परा पर विचार करते समय करेंगे और बतायेंगे कि यह ग्रन्थ कुन्दकुन्द की परम्परा का नहीं माना जा सकता। यहाँ तो मात्र प्रेमीजी के शब्दों में इतना ही कहना चाहेंगे कि “इन सब बातों से मूलाचार कुन्दकुन्द की परम्परा का ग्रन्थ नहीं मालूम होता है। विद्वानों से निवेदन है कि वट्टकेर को कुन्दकुन्द बनाने का प्रयत्न न करके इस ग्रन्थ का जरा और गहराई से अध्ययन करके यथार्थ को समझने की चेष्टा करें। यह सुस्पष्ट है कि मूलाचार के कर्ता कुन्दकुन्द नहीं हैं”। मूलाचार के समीक्षात्मक अध्ययन के कर्ता स्वयं डॉ. फूलचन्द जैन ‘प्रेमी’ भी यह स्वीकार करते हैं कि “उपर्युक्त समानताओं के आधार पर यह कहा जा सकता है कि मूलाचार और आचार्य कुन्दकुन्द द्वारा रचित ग्रन्थों में कुछ समानताएं अवश्य हैं फिर भी मूलाचार और आचार्य कुन्दकुन्द के ग्रन्थों के गहन अध्येता विद्वान भी मूलाचार को आचार्य कुन्दकुन्द द्वारा रचित नहीं कह सकते।” इससे फलित तो यही होता है कि उनकी दृष्टि से भी मूलाचार के कर्ता कुन्दकुन्द उसी मूलसंघ के प्रधान आचार्य थे, जिस परम्परा में उनके पश्चात् आचार्य वट्टकेर हुए, जिन्होंने उसी परम्परा के पोषक श्रमणों के

लिए आचार-व्यवहार का एक सच्चा एवं सुव्यवस्थित संविधान मूलाचार के रूप में लिपिबद्ध किया और मूलसंघ की अविच्छिन्न तथा उच्च परम्परा का साक्षात् दर्शन कराने वाले उस ग्रन्थ का नाम मूलाचार रखा। डॉ. फूलचन्द 'प्रेमी' की दृष्टि से वट्टकेर और आचार्य कुन्दकुन्द दोनों ही एक ही परम्परा के पोषक हैं। अतः मूलाचार में कुन्दकुन्द के ग्रन्थों का प्रभाव उनकी दृष्टि में आश्चर्य का विषय नहीं है। वे यह भी स्पष्ट रूप से मानते हैं कि वट्टकेर कुन्दकुन्द के पश्चात्पूर्वी थे। इस सम्बन्ध में मेरा उनसे मतभेद है। स्वयं मूलाचार में ही ऐसे अनेक तथ्य उपस्थित हैं, जिससे मूलाचार को कुन्दकुन्द की परम्परा का ग्रन्थ नहीं कहा जा सकता। इसपर हम आगे चर्चा करेंगे। यहाँ हमारा प्रतिपाद्य मात्र यही है कि आचार्य वट्टकेर को ही मूलाचार का प्रणेता माना जा सकता है।

मूलाचार की हस्तलिखित प्रतियों में और उसकी वृत्ति में वट्टकेर और कुन्दकुन्द दोनों के ही उल्लेख मिलने से दिगम्बर परम्परा के कुछ विद्वानों ने यह अनुमान लगा लिया कि वट्टकेर और कुन्दकुन्द एक ही व्यक्ति होंगे। यहाँ तक कि उन्होंने वट्टकेर को कुन्दकुन्द का विशेषण सिद्ध करने का भी प्रयत्न किया और 'वट्टक' का अर्थ प्रवर्तक और 'इरा' का अर्थ वाणी बता दिया। किन्तु वे अपनी इस व्याख्या के व्यामोह में यह बात भूल गये कि 'वट्टकेर' शब्द संस्कृत या प्राकृत का शब्द नहीं है। श्री आदिनाथ नेमिनाथ उपाध्ये स्पष्ट रूप से इस प्रयत्न को अनुचित बताते हुए कहते हैं कि यह सब तर्क-कौशल और शब्द-कौशल मात्र है। 'वट्टकेर' शब्द संस्कृत से निष्पन्न है या नहीं, जब इसी में संदेह है तो उसकी संस्कृत व्युत्पत्ति देना केवल आग्रह है। उन्होंने इस बात को भी स्पष्ट किया है कि 'वट्टकेर' शब्द कन्नड़ भाषा का शब्द है और यह स्थानसूचक शब्द है "वट्ट" शब्द का अर्थ पर्वत और 'केरी' शब्द का अर्थ रास्ता या गली होता है। अतः 'वट्टकेर' शब्द पर्वत के समीप तालाब से युक्त किसी स्थान या गांव का नाम हो सकता है अथवा वह किसी मोहल्ले का नाम हो सकता है। कारीकल के पद्मावती देवी के मंदिर के एक अभिलेख में "वट्टकेरी" गांव का दो बार उल्लेख आया है। यह अभिलेख शक संवत् १३९७ का है। इससे यह निश्चित हो जाता है कि वट्टकेरी नाम का कोई गांव १५वीं शताब्दी में अस्तित्ववान था, सम्भवतः मूलाचार के कर्ता इसी गांव के निवासी रहे होंगे। दक्षिण में व्यक्ति के नाम के प्रारम्भ में गांव के नाम का उल्लेख करने की परम्परा आज भी है। अतः पं. नाथूराम प्रेमी का यह अनुमान उचित ही है कि मूलाचार के कर्ता वट्टकेर अपने गांव के नाम से ही प्रसिद्ध हैं। उनका मूल नाम क्या था अब विस्मृति के गर्भ में चला गया है। निष्कर्ष रूप में मैं नाथूराम प्रेमी और मूलाचार के समीक्षात्मक

अध्ययन के लेखक डॉ. फूलचन्द जैन से इस सम्बन्ध में पूर्णतया सहमत हूँ कि मूलाचार के कर्ता आचार्य कुन्दकुन्द और वट्टकेर एक ही व्यक्ति नहीं हैं और आचार्य वट्टकेर ही इस ग्रन्थ के प्रणेता हैं।

**क्या मूलाचार संग्रह ग्रन्थ है ?**

क्या मूलाचार संग्रह ग्रन्थ है? यद्यपि परम्परागत रूप से यह माना जाता है कि आचार्य वट्टकेर मूलाचार के रचयिता हैं, किन्तु वृत्तिकार वसुनन्दि को छोड़कर अन्यत्र कहीं भी इस ग्रन्थ के कर्ता के रूप में वट्टकेर का उल्लेख नहीं मिलता। ग्रन्थ के आदि और अन्त में भी लेखक ने कहीं भी अपने नाम का संकेत नहीं दिया है। अतः कुछ विद्वानों की दृष्टि में यह विचार आया कि वस्तुतः मूलाचार का लेखक कोई नहीं है। इसे संग्रह ग्रन्थ मानने वालों की परम्परा में पं. परमानन्दजी, पं. नरोत्तम शास्त्री और श्वेताम्बर परम्परा के मुनि दर्शनविजयजी और पं. सुखलालजी का उल्लेख हुआ है। इनमें पं. परमानन्द जी अपनी पूर्व मान्यता का खण्डन करके इसे आचार्य वट्टकेर की मौलिक कृति मानते हैं। इस सम्बन्ध में उन्होंने अपना एक विस्तृत लेख “अनेकान्त” वर्ष १२, किरण ११ में प्रकाशित किया है। यद्यपि पं. सुखलालजी और मुनि दर्शनविजयजी इसे संग्रह ग्रन्थ मानते हैं किन्तु संग्रह ग्रन्थ मानने का आधार यह है कि इसमें आगमों, निर्युक्तियों, प्रकीर्णकों से अधिकांश गाथाएं ली गई हैं। इसकी ३०० से अधिक गाथाएं उत्तराध्ययन, आवश्यकनिर्युक्ति, पिंडनिर्युक्ति, जीवसमास, महापच्चक्खण, आउरपच्चखान और यापनीय परम्परा के ग्रन्थ भगवतीआराधना से यथावत रूप से मिलती हैं। इस प्रश्न पर हम अलग से चर्चा करेंगे कि ये गाथाएं मूलाचार के कर्ता ने इन ग्रन्थों से ली हैं अथवा मूलाचार से ये गाथाएं उन ग्रन्थों में गई हैं। वस्तुतः मूलाचार से इन गाथाओं का निर्युक्ति आदि में जाने का प्रश्न इसलिए नहीं उठता है कि मूलाचारकार स्वयं ही “आवसय निज्जुत्तिं वोच्छामि” कहकर ही इन गाथाओं का उल्लेख करता है। अतः यह मानना कि निर्युक्ति आदि के रचनाकारों ने मूलाचार से ये गाथाएं ली होंगी, कदापि सम्भव नहीं है। मात्र यही नहीं मूलाचार के पूरे के पूरे अध्याय इस बात के सूचक हैं कि वे किसी एक ग्रन्थ विशेष से संकलित हैं।

उदाहरण के रूप में “आतुर प्रत्याख्यान” की ७० गाथाओं में ६० गाथाएं मूलाचार के व्रतप्रत्याख्यान में समान या अल्पाधिक अन्तर से मिलती हैं। षडावश्यक में आवश्यकनिर्युक्ति की गाथाएं हैं। पंचाचार अधिकार में उत्तराध्ययन और भगवतीआराधना की गाथाएं अधिक हैं। पिण्डविशुद्धि अधिकार में पिण्डविशुद्धि नामक श्वेताम्बर ग्रन्थ की अनेक गाथाएं मिलती हैं। उत्तराध्ययन के समाचारी

अध्ययन से भी कुछ गाथाएं मिलती हैं। अतः इन आधारों पर यही मानना होगा कि ये गाथाएं मूलाचारकार ने अन्य ग्रन्थों से ही ली हैं। जब वह आवश्यकनिर्युक्ति को कहने की प्रतिज्ञा करके आवश्यकनिर्युक्ति की गाथाएं प्रस्तुत करता है, तो इससे फलित यही होता है कि वह न केवल उस ग्रन्थ से परिचित है, अपितु उसे ही प्रस्तुत भी कर रहा है। इसी प्रकार मूलाचार में “जदं चरे जदं चिद्रे” के रूप में दशवैकालिक की गाथाएँ उपलब्ध होती हैं तो हम यह तो नहीं कह सकते कि दशवैकालिक में ये गाथाएँ मूलाचार से ली गई हैं, क्योंकि भाषा, भाव, रचयिता आदि की दृष्टि से विद्वानों को इस सम्बन्ध में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए कि दशवैकालिक मूलाचार से प्राचीन है। अतः इतना तो निश्चित है कि इस ग्रन्थ में अन्य ग्रन्थों की गाथाओं का संग्रह किया गया है।

मूलाचार में अनेक गाथाएं ऐसी हैं जो दो-दो बार आई हैं। इससे भी यही फलित होता है कि मूलाचार एक संग्रह ग्रन्थ है। पुनः मूलाचार में अनेक गाथाओं में स्पष्ट अन्तर्विरोध है, इससे भी यह फलित होता है कि वह संग्रह ग्रन्थ है। किन्तु इससे यह नहीं मान लेना चाहिए कि ग्रन्थ कर्ता ने अपनी मौलिकता का कोई परिचय ही नहीं दिया है। स्पष्टतः मूलाचार एक उद्देश्यपूर्ण रचना है। उसमें मुनि आचार के प्रतिपादन के उद्देश्य को लेकर ही गाथाओं का संकलन किया गया है। मात्र इतना ही नहीं, मुझे यह मानने में भी कोई आपत्ति नहीं है कि उसकी अनेक गाथाएं स्वयं कर्ता की रचना हो सकती हैं। वस्तुतः जिस प्रकार एक माली विभिन्न कुसुमों का संचय करके एक सुनियोजित उद्देश्य से किसी विशिष्ट माला का निर्माण करता है उसी प्रकार आचार्य वट्टकेर ने इस ग्रन्थ की रचना की।

अतः निर्णय रूप में यही कहा जा सकता है कि आचार्य वट्टकेर ने विभिन्न ग्रन्थों से सामग्री का संकलन करके एक सुनियोजित ढंग से अपनी परम्परा के मुनियों के आचार के लिए इस ग्रन्थ का निर्माण किया था।

जिन विद्वानों को इसे संग्रह ग्रन्थ मानने में आपत्ति होती है वे कभी-कभी ऐसा विचित्र तर्क देते हैं कि भद्रबाहु श्रुतकेवली तक दिगम्बर-श्वेताम्बर जैसे भेदों की सृष्टि नहीं हुई थी, उस समय तक भगवान महावीर का शासन यथाजातमुद्रा रूप में ही चल रहा था, उनके द्वारा रचित निर्युक्तियाँ उस समय साधु समाज में प्रचलित थीं, खासकर उनके शिष्यों-प्रशिष्यों में उनका पठन-पाठन बराबर चल रहा था। ऐसी स्थिति में मूलाचार में कुछ गाथाओं की समानता पर से आदान-प्रदान की कल्पना करना संगत नहीं जान पड़ता। आश्चर्य इस बात को लेकर होता है कि यदि दिगम्बर परम्परा में निर्युक्तियों का पठन-पाठन बराबर चल रहा था तो फिर वे अचानक लुप्त कैसे हो गईं और दिगम्बर परम्परा में प्रचलित तत्त्वार्थसूत्र



की व्याख्याओं में अथवा अन्य टीकाओं में उनके उद्धरण क्यों नहीं आये? पुनः जो भद्रबाहु दिगम्बर श्वेताम्बर के विभाजन के पूर्व हुए हैं, वे भद्रबाहु निर्युक्तियों के रचनाकार नहीं हैं, वे अन्य भद्रबाहु की रचनाएँ हैं, क्योंकि स्वयं निर्युक्तियों में ही उन्होंने भद्रबाहु की वन्दना की है। यह तो सम्भव नहीं था कि लेखक स्वयं ही अपने को प्रणाम करे। अतः यह निश्चित है कि न केवल मूलाचार में निर्युक्तियों और प्रकीर्णकों की गाथाएँ सम्मिलित की गई हैं, अपितु उसकी रचना भी इनके बाद की ही है। यदि निर्युक्तियाँ दिगम्बर परम्परा में मान्य और प्रचलित थीं, तो ऐसा कौन सा कारण उपस्थित हो गया कि उस परम्परा ने उन निर्युक्तियों का त्याग कर दिया। यदि यह कहा जाए कि जिन ग्रन्थों पर ये निर्युक्तियाँ थीं उन ग्रन्थों के लुप्त हो जाने से ये निर्युक्तियाँ भी लुप्त हो गई हों तो यह युक्तिसंगत नहीं है। क्योंकि अनेक ग्रन्थ लुप्त हो गये और उनकी व्याख्याएँ आज भी उपलब्ध हैं, पुनः यदि यह माना जाए कि जिन ग्रन्थों पर निर्युक्तियाँ लिखी गईं उन्हें अस्वीकार कर देने के कारण उनकी निर्युक्तियों को भी अस्वीकार कर दिया, तो इसका फलित यह होगा कि वे निर्युक्तियाँ उनकी अपनी परम्परा की नहीं थीं।

### मूलाचार और उसकी परम्परा

मूलाचार को वर्तमान दिगम्बर जैन परम्परा में आगम स्थानीय ग्रन्थ के रूप में मान्य किया जाता है। यह ग्रन्थ मुख्यतः अचेल परम्परा के साधु-साधियों के आचार से सम्बन्धित है। यह भी निर्विवाद सत्य है कि दिगम्बर परम्परा में इस ग्रन्थ का उतना ही महत्त्व है जितना कि श्वेताम्बर परम्परा में आचारांग का। यही कारण है कि धवला और जयधवला (दसवीं शताब्दी) में इसकी गाथाओं को आचारांग की गाथा कहकर उद्धृत किया गया है। यह स्पष्ट है कि दिगम्बर परम्परा में जब आचारांग को लुप्त मान लिया गया है तो उसके स्थान पर मूलाचार को ही आचारांग के रूप में देखा जाने लगा। वस्तुतः आचारांग के प्राचीनतम अंश प्रथम श्रुतस्कंध में अचेलता का प्रतिपादन होते हुए भी मुनि के वस्त्र ग्रहण सम्बन्धी कुछ उल्लेख, फिर चाहे वे आपवादिक स्थिति के क्यों न हों, पाये ही जाते हैं। यही कारण था कि अचेलकत्व पर अत्यधिक बल देने वाली दिगम्बर परम्परा अपने सम्प्रदाय में इसे मान्य न कर सकी और उसके स्थान पर मूलाचार को ही अपनी परम्परा का मुनि आचार सम्बन्धी ग्रन्थ मान लिया। आर्यिका ज्ञानमती जी ने भारतीय ज्ञानपीठ से प्रकाशित मूलाचार की भूमिका में यह लिखा है कि आचारांग के आधार पर चौदह सौ गाथाओं में ग्रन्थकर्ता ने इस ग्रन्थ की रचना की; किन्तु हमें यह स्मरण रखना चाहिए कि यह ग्रन्थ आचारांग और विशेष रूप से उसके प्राचीनतम अंश प्रथम श्रुतस्कंध के आधार पर तो बिलकुल

ही नहीं लिखा गया है। जिन ग्रन्थों के आधार पर मूलाचार की रचना हुई है वे श्वेताम्बर परम्परा के मान्य बृहत्प्रत्याख्यान, आतुरप्रत्याख्यान, आवश्यकनिर्युक्ति, जीवसमास आदि हैं जिनकी सैकड़ों गाथाएँ शौरसेनी रूपान्तरण के साथ इसमें गृहीत हैं। वस्तुतः मूलाचार श्वेताम्बर परम्परा में मान्य निर्युक्तियों, प्रकीर्णकों की विषयवस्तु एवं सामग्री से निर्मित है।

दिगम्बर परम्परा इसे अपनी परम्परा का ग्रन्थ मानती है, किन्तु दिगम्बर परम्परा के बहुश्रुत विद्वान् पं. नाथूरामजी प्रेमी ने निम्न आठ आधारों पर इसे कुन्दकुन्द की दिगम्बर जैन परम्परा से भिन्न परम्परा का ग्रन्थ स्थापित किया है—

१. मूलाचार और भगवतीआराधना की पचासों गाथाएँ एक सी और समान अभिप्राय को प्रकट करने वाली हैं। अतः यह ग्रन्थ भगवतीआराधना की परम्परा का है।

२. मूलाचार की “अचेलकुद्देसीय” आदि दस कल्पों की जो गाथाएँ हैं, वे गाथाएँ मूलाचार और भगवतीआराधना में समान रूप से पायी जाती हैं। श्वेताम्बर परम्परा के “जीतकल्पभाष्य”, निर्युक्तियों और टीकाग्रन्थों में भी ये उपलब्ध हैं। “प्रमेयकमल मार्तण्ड” के स्त्रीमुक्तिविचार में प्रभाचन्द्र ने इनका उल्लेख श्वेताम्बर परम्परा की गाथा के रूप में किया है।

३. मूलाचार की “सेज्जागासणीसेज्जा” (३९१) नामक गाथा भी मूल आराधना (३०७) से मिलती है। इसमें यह कहा गया है कि वैयावृत्ति करने वाला मुनि रुग्ण मुनि का आहार औषधि से उपकार करे (आहार लाकर देने की परम्परा दिगम्बर मुनिवर्ग में प्रचलित नहीं है, वह श्वेताम्बर या यापनीयों की ही परम्परा है)।

४. भगवतीआराधना की १४४ वीं गाथा के समान इसकी ३८७ वीं गाथा में आचारदशा, जीतकल्प आदि का उल्लेख है, जो यापनीय और श्वेताम्बर परम्परा के मान्य ग्रन्थ हैं और आज भी उपलब्ध हैं।

५. मूलाचार की गाथा २७७, २७८, २७९ में संयमी मुनि और आर्यिकाओं को चार प्रकार के सूत्र काल शुद्धि आदि के बिना नहीं पढ़ना चाहिये। इनसे अन्य आराधना, निर्युक्ति, मरण-विभक्ति, संग्रह, स्तुति, प्रत्याख्यान, आवश्यक और धर्मकथा आदि पढ़ना चाहिये। ये सब ग्रन्थ मूलाचार के कर्ता के समक्ष थे, परन्तु कुन्दकुन्द की परम्परा के साहित्य में इन ग्रन्थों के नाम उपलब्ध नहीं हैं, मात्र यही नहीं उस परम्परा में इन ग्रन्थों के पढ़ने की कोई परम्परा रही

हो, ऐसा भी कहीं संकेत उपलब्ध नहीं होता (इस सम्बन्ध में मैंने अलग से विचार किया है जिसे आगे देखा जा सकता है)।

६. मूलाचार में २२ तीर्थकर सामायिक संयम का उपदेश देते हैं किन्तु ऋषभ, महावीर छेदोपस्थापनीय का उपदेश देते हैं। इसी प्रकार प्रथम और अंतिम तीर्थकर सप्रतिक्रमण धर्म का प्रतिपादन करते हैं जबकि मध्यम के २२ तीर्थकर अपराध होने पर प्रतिक्रमण का विधान करते हैं। ये दोनों गाथाएं भद्रबाहु कृत आवश्यक निर्युक्ति में भी हैं और वह श्वेताम्बर ग्रन्थ है। दिगम्बर परम्परा में तीर्थकरों की आचार परम्परा में भेद होता है, ऐसी मान्यता ही नहीं है, अतः यह ग्रन्थ उनकी परम्परा से भिन्न है।

७. आवश्यकनिर्युक्ति की ८० गाथाएं मूलाचार में भी हैं। मूलाचार में प्रत्येक आवश्यक का कथन करते समय यह कहा गया है कि प्रस्तुत आवश्यक पर समास से अर्थात् संक्षेप में निर्युक्ति कहूंगा, अवश्य ही अर्थ सूचक है, क्योंकि सम्पूर्ण मूलाचार में आवश्यक अधिकार को छोड़कर अन्य प्रकरणों में 'निर्युक्ति' शब्द शायद ही आया हो। षडावश्यक के अन्त में भी इस अध्याय को निर्युक्ति के नाम से ही निर्दिष्ट किया गया है।

वैसे तो प्रेमीजी ने मात्र भगवतीआराधना से इसकी गाथाओं की समरूपता की चर्चा की है, परन्तु बात यही समाप्त नहीं होती। मूलाचार में श्वेताम्बर परम्परा में मान्य अनेक ग्रन्थों की गाथायें समान रूप से उपलब्ध होती हैं। उनमें शौरसेनी और अर्धमागधी अथवा महाराष्ट्री के अन्तर के अतिरिक्त कहीं किसी प्रकार का अन्तर भी नहीं है। मूलाचार के बृहत्प्रत्याख्यान नामक द्वितीय अधिकार में अधिकांश गाथायें महापच्चक्खाण और आउरपच्चक्खाण से मिलती हैं। मूलाचार के बृहत् प्रत्याख्यान और संक्षिप्त प्रत्याख्यान इन दोनों अधिकारों में क्रमशः ७१ और १४ गाथायें अर्थात् कुल ८५ गाथाएँ हैं। इनमें से ७० गाथायें तो आतुरप्रत्याख्यान नामक श्वेताम्बर परम्परा के प्रकीर्णक से मिलती हैं। शेष १५ गाथाओं में भी कुछ महापच्चक्खाण एवं चन्द्रावेध्यक में मिल जाती हैं। ये ग्रन्थ श्वेताम्बर परम्परा में प्रकीर्णकों के रूप में आज भी स्वीकार्य हैं। पुनः अध्याय का नामकरण भी उन्हीं ग्रन्थों के आधार पर है। इसी प्रकार मूलाचार के षडावश्यक अधिकार की १९२ गाथाओं में से ८० गाथायें आवश्यकनिर्युक्ति में समान रूप से उपलब्ध हैं। इसके अतिरिक्त इसी अधिकार में पाठभेद के साथ उत्तराध्ययन, अनुयोगद्वार और दशवैकालिक से अनेक गाथायें मिलती हैं। पंचाचार-अधिकार में सबसे अधिक २२२ गाथायें हैं। इसकी ५० से अधिक गाथायें उत्तराध्ययन और जीवसमास नामक श्वेताम्बर ग्रन्थ में समान रूप से पायी जाती

हैं। इसमें जो षड्जीव निकाय का विवेचन है उसकी अधिकांश गाथायें उत्तराध्ययन के ३६वें अध्याय, प्रज्ञापना, आवश्यकनिर्युक्ति और जीवसमास में हैं। इसी प्रकार पांच समिति, गुप्ति आदि का जो विवेचन उपलब्ध होता है वह भी उत्तराध्ययन और दशवैकालिक में किंचित् भेद के साथ उपलब्ध होता है। मूलाचार के पिण्डशुद्धि अधिकार की ८३ गाथाओं में से कुछ गाथायें श्वेताम्बर परम्परा की पिण्डनिर्युक्ति नामक ग्रन्थ में यथावत् उपलब्ध होती हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि मूलाचार की अधिकांश सामग्री श्वेताम्बर परम्परा के उत्तराध्ययन, दशवैकालिक, पिण्डनिर्युक्ति, आउरपच्चक्खाण, महापच्चक्खाण, आवश्यकनिर्युक्ति, चन्द्रावेध्यक आदि श्वेताम्बर परम्परा के मान्य ग्रन्थों से संकलित हैं। आश्चर्य तो यह लगता है कि हमारी दिग्म्बर परम्परा के विद्वान् मूलाचार में कुन्दकुन्द के ग्रन्थों से मात्र २१ गाथायें समान रूप से उपलब्ध होने पर इसे कुन्दकुन्द की कृति सिद्ध करने का साहस करते हैं और जिस परम्परा के ग्रन्थों से इसकी आधी से अधिक गाथायें समान रूप से मिलती हैं उसके साथ इसकी निकटता को भी दृष्टि से ओझल कर देते हैं। मूलाचार की रचना उसी परम्परा में सम्भव हो सकती है जिस परम्परा में उत्तराध्ययन, दशवैकालिक, आवश्यकनिर्युक्ति, पिण्डनिर्युक्ति, महापच्चक्खाण, आउरपच्चक्खाण आदि ग्रन्थों के अध्ययन-अध्यापन की परम्परा रही है। नवीन खोजों से यह स्पष्ट हो चुका है कि यापनीय परम्परा में इन ग्रन्थों का अध्ययन होता था।

### मूलाचार की भाषा

यह स्पष्ट है कि मूलाचार की भाषा शौरसेनी प्राकृत है फिर भी कुन्दकुन्द के ग्रन्थों की शौरसेनी प्राकृत और मूलाचार की शौरसेनी प्राकृत में थोड़ा अन्तर परिलक्षित होता है। उदाहरण के रूप में मूलाचार के पंचाचार अधिकार की ५०वीं गाथा के तीन चरण लगभग समान हैं किन्तु चौथा भिन्न है। वे गाथाएं इस प्रकार हैं -

रागी बंधइ कम्मं मुच्चई जीवो विराग संपण्णो ।

एसो जिणोवएसो समासदो, बंधमोक्खाणं ॥५०॥ (मूलाचार- पंचाचाराधिकार)

रत्तो बंधदि कम्मं मुंचदिजीवो विरागसंपण्णो ।

एसो जिणोवदेसो, तम्हा कम्मसु, मा रज्ज ॥ १५० ॥ (समयसार)

यदि हम इन दोनों गाथाओं पर विचार करते हैं तो देखते हैं कि मूलाचार की शौरसेनी पर अर्धमागधी एवं महाराष्ट्री का स्पष्ट प्रभाव है। मूलाचार की गाथा में रागी, बंधई, मुच्चई, जिणोवएसो - ये चारो शब्द महाराष्ट्री प्राकृत के अनुसार

है। जबकि समयसार में रत्तो, बंधदि, मुंचदि, जिणोवदेसो - ये चारो शब्द विशुद्ध रूप से शौरसेनी प्राकृत के रूप हैं। मूलाचार में मध्यवर्ती 'त' के स्थान पर 'द' न होकर 'य श्रुति' का पाया जाना यह सूचित करता है कि उसके लेखक पर महाराष्ट्री का प्रभाव है।

इसी प्रकार मूलाचार के मूल गुण अधिकार की १२वीं गाथा और 'नियमसार' की ६२वीं गाथा भी लगभग समान हैं। यद्यपि इनमें कुछ भिन्नता भी है, इस गाथा में जहाँ मूलाचार में 'सपरिहरि' शब्द का प्रयोग है वहाँ नियमसार में 'सपरिहिदं' का प्रयोग है। यहाँ भी मूलाचार में महाराष्ट्री का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है। मूलाचार पंचाचाराधिकार की २८वीं एवं १३१वीं गाथा में जहाँ 'लिप्पइ' शब्द है, वहीं 'लिप्पदि' शब्द भी है। एक ही ग्रन्थ में यह भाषा के स्वरूप का भेद विचारणीय है। यद्यपि इसी प्रकार का भाषा-भेद कुन्दकुन्द के ग्रन्थों में भी पाया जाता है। जहाँ कुन्दकुन्द के ग्रन्थों में कुछ स्थलों पर महाराष्ट्री प्रभावित रूप मिला है, वहाँ मूलाचार में शुद्ध शौरसेनी रूप भी मिला है। उदाहरण के रूप में चरित्रपाहुड़ की ३४वीं गाथा में 'वीरओ' रूप है वहीं मूलाचार के पंचाचाराधिकार में 'वीरदि' रूप है। स्वयं मूलाचार में भी अर्धमागधी या महाराष्ट्री के साथ शौरसेनी के रूप भी मिलते हैं। उदाहरण के रूप में समाचाराधिकार की १६२वीं गाथा में 'आएसस्स' पाठ है, जिसका संस्कृत रूप 'आगतस्य' है वहीं १६३वीं गाथा में 'आगन्तुय' है। इसी प्रकार 'व्रतप्रत्याख्यान संस्तरस्तवाधिकार' की गाथा ५६ में 'भणदि' रूप है। वहीं उसी की गाथा ५९वीं गाथा में महाराष्ट्री का 'भणति' रूप है। इसी अधिकार की गाथा ७६ में 'पंडियमरण' रूप है, जबकि गाथा ७७ में 'पंडिदमरण' रूप मिलता है। आश्चर्य यह भी है कि उसके पूर्व ७६वीं गाथा के प्रथम चरण में 'जाति' का 'जादि' रूप प्रयुक्त है। ५७वीं गाथा में 'लहइ' रूप आया है, जबकि ११८वीं गाथा में 'लहदि' रूप है। 'लहई' शुद्ध रूप से महाराष्ट्री प्राकृत का प्रयोग है। गाथा १०१ के प्रथम, द्वितीय चरण में 'मरिदत्वं' पाठ है, आश्चर्य यह भी है कि इसी गाथा के अन्त में (१०१ वीं गाथा में) 'मरियव्वं' रूप भी है। गाथा १०३ में 'होइ' रूप का प्रयोग है, जबकि अन्यत्र अनेक गाथाओं में 'होदि' रूप है। गाथा ११७ में 'छिन्दइ' रूप मिलता है जबकि अन्यत्र 'छिन्ददि' रूप का भी प्रयोग हुआ है। केवल प्रारम्भिक तीन अध्ययनों से ही ये उदाहरण दिये हैं। सम्पूर्ण ग्रन्थ में इस प्रकार के अनेक रूप जो महाराष्ट्री अर्धमागधी से प्रभावित हैं, देखे जा सकते हैं। इस आधार पर हमारा प्रतिपाद्य मात्र इतना ही है कि इस ग्रन्थ के निर्माण में श्वेताम्बर परम्परा में मान्य आगमों, प्रकीर्णकों, निर्युक्तियों आदि का पूरा उपयोग हुआ है।

